

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 1: यदुवंश पर शाप

13 September 2026



एकादश स्कन्ध का आरम्भ एक साथ ही राजसी और कोमल स्वर से होता है: पृथ्वी का भार अन्ततः उतर चुका है, और भगवान् श्रीकृष्ण मौन भाव से अपने ही तेजस्वी कुल को संसार से उठा लेने तथा अपने शाश्वत धाम को लौटने का संकल्प करते हैं — और ऋषियों के वचनों को ही उस दिव्य इच्छा का साधन बनने देते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम एकादश स्कन्ध में प्रवेश करते हैं, जो सम्पूर्ण शास्त्र के सबसे आध्यात्मिक रूप से सघन भागों में से एक है — वह स्कन्ध जो भगवान् की अन्तिम शिक्षाएँ उनके प्रिय मित्र उद्धव तक ले जाएगा और, अपनी समाप्ति पर, स्वयं भगवान् के संसार से प्रस्थान का वर्णन करेगा। किन्तु उद्धव-गीता का ज्ञान प्रकट होने से पहले, श्रीशुकदेव गोस्वामी को यह बताना होगा कि इसकी भूमिका कैसे तैयार हुई: कैसे भगवान् श्रीकृष्ण, पृथ्वी का भार उतारने का अपना कार्य पूर्ण कर, अपने अन्तिम अवशिष्ट कार्य की ओर मुड़े — अपने ही परम शक्तिशाली कुल, यदुवंश, का शान्तिपूर्ण विसर्जन। यह प्रथम अध्याय ऋषियों के शाप, लोहे के मूसल, तथा भगवान् द्वारा उस विनाशकारी नियति को चुपचाप स्वीकार किए जाने की विचित्र एवं गम्भीर कथा सुनाता है — एक घटनाक्रम जो उनकी अपनी पूर्वनिर्धारित इच्छा के अनुरूप ही था।

अध्याय-पारेचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 1 (प्रथम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: यदुवंश पर शाप
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित (जो अध्याय के भीतर दो प्रश्न भी पूछते हैं)
- मुख्य स्थान: द्वारका तथा निकटवर्ती पावन तीर्थ पिण्डारक, भगवान् की पार्थिव लीलाओं की समाप्ति के निकट
- मुख्य विषय-वस्तु: भगवान् का यदुवंश को पृथ्वी से उठा लेने का संकल्प, तथा कैसे चंचल यादव-कुमारों पर ऋषियों का शाप उस प्रस्थान का नियत कारण बना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 1, श्लोक 1-24
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पृथ्वी का उतरा हुआ भार

श्रीशुकदेव गोस्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की पार्थिव लीला के विशाल क्रम को समेटते हुए महान् कथा को पुनः आरम्भ करते हैं। अपने भ्राता बलराम तथा एकत्रित यादवों सहित भगवान् ने संसार को सताने वाले दैत्यों का संहार किया; और, पाण्डवों तथा कौरवों के मध्य कलह को परिपक्व होने देकर उन्होंने पृथ्वी का भारी बोझ — अहंकारी एवं अधर्मी राजाओं की भीड़ — उतारने की व्यवस्था की।

श्रीशुक उवाच

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।

भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca kṛtvā daitya-vadham kṛṣṇaḥ sa-rāmo yadubhir vṛtaḥ bhuvo 'vatārayad bhāraṁ javiṣṭhaṁ janayan kalim

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: बलराम तथा यादवों से घिरे श्रीकृष्ण ने दैत्यों का संहार किया और, शीघ्र ही कलह उत्पन्न करके, पृथ्वी का भार उतार दिया। (स्कन्ध 11, अध्याय 1, श्लोक 1)

भगवान् ने पाण्डवों को अपना साधन बनाया, श्रीशुकदेव बताते हैं — वे धर्मात्मा भ्राता, जिनका क्रोध कौरवों ने छल-भरे द्यूत, अपमानजनक तिरस्कार, द्रौपदी को केशों से खींचने, तथा असंख्य अन्य अन्यायों द्वारा बार-बार भड़काया था। उनके माध्यम से भगवान् ने दोनों पक्षों में एकत्रित राजाओं का अन्त कराया, और इस प्रकार पृथ्वी भार से मुक्त हुई।



भगवान् श्रीकृष्ण, सदैव धर्मात्मा पाण्डवों के मार्गदर्शक, महान् संग्राम को उसकी नियत समाप्ति तक पहुँचाकर पृथ्वी का भार उतार देते हैं (श्लोक 1-2)।

भगवान् का अन्तःसंकल्प

फिर भी, राजाओं तथा उनकी सेनाओं के चले जाने पर भी, अगोचर लीलाओं वाले भगवान् ने अन्तर्मन में विचार किया। यद्यपि पृथ्वी का भार उतर चुका था, तथापि उन्होंने अपने कार्य को तब तक पूर्ण नहीं माना जब तक उनका अपना अजेय कुल, यदुवंश, फल-फूल रहा था। यह वंश, सदा उनकी ही भुजाओं द्वारा रक्षित तथा असीम समृद्धि से बलवान् बना हुआ, किसी बाह्य शक्ति द्वारा — देवताओं द्वारा भी — कभी वश में नहीं किया जा सकता था। संसार में शेष रह जाने पर ऐसी अपराजेय शक्ति स्वयं एक नए प्रकार का भार बन जाती। और इसीलिए भगवान् ने अपने ही कुल का विसर्जन भीतर से करने का संकल्प किया — उतनी ही सहजता एवं अनिवार्यता से जैसे बाँस का वन अपने ही तनों की रगड़ से उत्पन्न अग्नि द्वारा भस्म हो जाता है।

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत् कथञ्चिन्
मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय वेणु-
स्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

naivānyataḥ paribhavo 'sya bhavet kathañcin mat-saṁśrayasya vibhavonnanahanasya nityam antaḥ kaliṁ yadu-kulasya vidhāya veṇu- stambasya vahnim iva śāntim upaimi dhāma

अर्थ: यह यदुवंश, सदा मेरे ही आश्रय में तथा समृद्धि से भरा हुआ, किसी बाह्य शक्ति द्वारा कभी पराभूत नहीं किया जा सकता; अतः यदुकुल के भीतर कलह उत्पन्न कर — जैसे अग्नि बाँस के वन को भस्म कर देती है — मैं शान्तिपूर्वक अपने धाम को लौट जाऊँगा। (स्कन्ध 11, अध्याय 1, श्लोक 4)

ऐसा संकल्प करके, अटल इच्छाशक्ति वाले भगवान् ने ब्राह्मणों के शाप को बाह्य कारण बनाकर अपने ही कुल का विसर्जन कराया। तत्पश्चात् श्रीशुकदेव संसार में भगवान् की उपस्थिति के ढंग का स्मरण करते हैं: कैसे उन्होंने ऐसे सौन्दर्य से सबके नेत्रों को मोह लिया जो हर अन्य लावण्य को फीका कर देता था, और अपने वचनों से उन सबके हृदय मोह लिए जो उन्हें स्मरण करते थे; कैसे उनके चरण-चिह्नों का दर्शन ही देखने वालों की चंचल क्रियाओं को थाम लेता था; और कैसे, उनका यश अब संसार में फैलकर मनोहर छन्दों में गाया जाकर, वे जानते थे कि जो कोई भी उनका श्रवण या कीर्तन करेगा, वह अज्ञान के अन्धकार से सहज ही ऊपर उठ जाएगा। यह सब पूर्ण कर भगवान् अपने धाम को लौटने की तैयारी करने लगे।

राजा परीक्षित का प्रश्न

यह सुनकर कि यदुवंश का विनाश एक शाप के कारण हुआ, राजा परीक्षित पूछने को व्याकुल हो उठते हैं। वे विचार करते हैं — भला ब्राह्मणों का शाप वृष्णियों पर कैसे पड़ सकता था, जो ब्राह्मण-भक्त, उदार-दानी, सदा अपने बड़ों का सम्मान करने वाले, तथा जिनका मन पूर्णतः श्रीकृष्ण के प्रेम में समर्पित था? ऐसे शाप का अवसर क्या था, और उसका स्वरूप कैसा था? और हृदय से इतने एकजुट लोगों के मध्य कोई वास्तविक कलह उत्पन्न कैसे हो सकता था? श्रीशुकदेव, इस प्रश्न की गम्भीरता से प्रसन्न होकर, कथा को उसके मूल से आरम्भ करते हैं।

पिण्डारक में ऋषिगण

श्रीशुकदेव कहते हैं — भगवान् ने, समस्त लावण्य से युक्त रूप धारण कर, अपनी सभी इच्छाओं की सदा पूर्ति के साथ परम शुभ कर्म कर, तथा अपनी नगरी द्वारका में अपनी लीलाओं का आनन्द ले, अब उस एकमात्र शेष कार्य की ओर ध्यान दिया — अपने कुल का विसर्जन। इसी मनःस्थिति में उन्होंने अपने दर्शन को आए महान् ऋषियों की एक महती सभा को सादर विदा दी: विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, नारद तथा अन्य। विदा लेकर ये ऋषि निकटवर्ती पावन तीर्थ पिण्डारक की ओर चले गए।



महान् ऋषियों की एक सभा — विश्वामित्र, दुर्वासा, नारद, वसिष्ठ तथा अन्य — द्वारका से पावन पिण्डारक उपवन की ओर प्रस्थान करती है (श्लोक 11-12)।

पारेहास और शाप

वहीं कुछ यादव-कुमार, उच्छृंखल एवं असावधान, एकत्रित ऋषियों के पास आ पहुँचें। दिखावटी विनम्रता के साथ उन्होंने ऋषियों के चरण पकड़े, और फिर, धृष्ट क्रीड़ा के भाव से, इन पवित्र पुरुषों का उपहास करने का प्रयास किया। जाम्बवती के पुत्र साम्ब को गर्भवती स्त्री का वेश पहनाकर, उन्होंने “उसे” ऋषियों के समक्ष प्रस्तुत किया और, वेश धारण किए कुमार की ओर से कृत्रिम लज्जा दिखाते हुए, पूछा कि होने वाली सन्तान पुत्र होगी या पुत्री।

ऋषियों की दृष्टि कभी विफल नहीं होती थी — उन्होंने तत्काल इस छल को भाँप लिया, और उपहास से कुपित होकर ऐसे वचन कह दिए जो अनकहे नहीं किए जा सकते थे।

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ।

जनयिष्यति वो मन्दा मुषलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

evam pralabdhā munayas tām ūcuḥ kupitā nṛpa janayiṣyati vo mandā muṣalaṁ kula-nāśanam

अर्थ: इस प्रकार उपहास किए जाने पर, ऋषियों ने क्रोध से भरकर उनसे कहा: हे मूर्खों, यह एक लोहे का मूसल उत्पन्न करेगा जो तुम्हारे समस्त कुल का नाश कर देगा। (स्कन्ध 11, अध्याय 1, श्लोक 16)



यादव-कुमार पिण्डारक के ऋषियों के समक्ष दिखावटी श्रद्धा से नत होते हैं, जिनकी अचूक अन्तर्दृष्टि उनके परिहास का उत्तर एक भाग्य-निर्णायक वचन से देगी (श्लोक 13-16)।

लोहे का मूसल

इन वचनों से भयभीत होकर कुमारों ने तत्काल साम्ब का पेट खोला — और वहाँ, आश्चर्यजनक रूप से, उन्हें लोहे का एक मूसल मिला। विवर्ण एवं व्यथित होकर, “हम अभागों ने यह क्या कर डाला? लोग हमारे विषय में क्या कहेंगे?” — यह विलाप करते हुए वे मूसल को घर ले गए। नत मुख से उसे राजसभा में लाकर, समस्त यादवों के समक्ष, उन्होंने पूरी घटना अपने राजा उग्रसेन को सुनाई। ऋषियों के अमोघ शाप के विषय में सुनकर तथा सम्मुख लोहे का मूसल देखकर द्वारकावासी विस्मय एवं भय से भर गए।

राजा उग्रसेन ने मूसल को पीसकर चूर्ण करवाया और समुद्र में फेंकवा दिया, साथ ही लोहे का वह अन्तिम छोटा टुकड़ा भी जो चूर्ण नहीं किया जा सका। किन्तु शाप अपने ही मौन ढंग से पहले ही कार्यरत था: एक मछली ने लोहे का टुकड़ा निगल लिया, जबकि चूर्ण के सूक्ष्म कण लहरों द्वारा तट पर लाए गए, जहाँ समय के साथ वे एरका नामक एक तीक्ष्ण घास के रूप में उग आए। वह मछली आगे चलकर एक मछुआरे के जाल में फँसी, और उसके भीतर मिला लोहे का टुकड़ा एक व्याध ने अपने बाण की नोक पर जड़ लिया।



राजा उग्रसेन की आज्ञा से लोहे का मूसल पीसकर चूर्ण किया जाता है और समुद्र में फेंका जाता है, जहाँ लहरें उसके कणों को तट पर ले आती हैं और वे एरका घास के रूप में उगते हैं (श्लोक 21-22)।

भगवान् का मौन अनुमोदन

यहाँ श्रीशुकदेव सम्पूर्ण प्रसंग का सबसे गूढ़ सत्य प्रकट करते हैं। भगवान् जानते थे कि इससे क्या होगा — और, सर्वशक्तिमान होने के कारण, उनमें ऋषियों के शाप को निष्फल कर देने की पूर्ण सामर्थ्य थी। फिर भी उन्होंने उसे निरस्त न करना चुना। इसके विपरीत, उन्होंने मौन भाव से उसका अनुमोदन किया, क्योंकि वे स्वयं ही संहारक थे, और यही वह परिणाम था जिसे वे अपने हृदय में पहले ही संकल्पित कर चुके थे।

भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ।

कर्तुं नैच्छद् विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

bhagavān jñāta-sarvārtha īśvaro 'pi tad-anyathā kartum naicchad vipra-śāpaṁ kāla-rūpya anvamodata

अर्थ: भगवान्, जो समस्त प्रयोजनों को जानते थे तथा उसे अन्यथा करने की सामर्थ्य रखते थे, ब्राह्मणों के शाप को निरस्त करना नहीं चाहते थे; स्वयं काल-स्वरूप संहारक होने के कारण उन्होंने उसका अनुमोदन किया। (स्कन्ध 11, अध्याय 1, श्लोक 24)



द्वारका के विस्मय एवं भय के मध्य शान्त, भगवान् श्रीकृष्ण मौन भाव से ऋषियों के शाप को उस इच्छा के नियत साधन के रूप में स्वीकार करते हैं जिसे वे अपने हृदय में पहले ही स्थिर कर चुके हैं (श्लोक 24)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् के अवतार एक पूर्ण प्रयोजन सिद्ध करते हैं। कृष्ण का कार्य केवल सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार ही नहीं था, अपितु समय पूर्ण होने पर अपने ही कुल को उठा लेना भी था — उनका ध्येय पूर्ण है, कुछ भी अधूरा शेष नहीं रहता (श्लोक 1-4)।
2. शाप भी दिव्य इच्छा की सेवा करता है। भगवान्, ऋषियों के वचनों को निरस्त करने में पूर्णतः समर्थ होते हुए भी, उनका सम्मान करते हैं — यह दर्शाते हुए कि जो दुर्भाग्य प्रतीत होता है, वही उस साधन का रूप हो सकता है जिससे एक उच्चतर प्रयोजन मौन भाव से पूर्ण होता है (श्लोक 24)।
3. पवित्र पुरुषों का उपहास गम्भीर परिणाम लाता है। यादव-कुमारों का ऋषियों के प्रति परिहास एक अटल नियति को गति दे गया — एक गम्भीर स्मरण कि सन्त-पुरुषों के प्रति अनादर कभी हल्की बात नहीं है (श्लोक 13-16)।
4. असुरक्षित समृद्धि स्वयं संकट बन सकती है। यदुवंश, अजेय तथा सौभाग्य से पूर्ण, अपने ही आन्तरिक कलह के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से नहीं मिटाया जा सकता था — यह चेतावनी कि बाह्य बल आन्तरिक विशृंखलता से रक्षा नहीं करता (श्लोक 3-4)।
5. भगवान् बिना व्यक्तिगत आसक्ति के कार्य करते हैं। कृष्ण अपने ही परिवार के विसर्जन का भी पूर्ण समता के साथ अनुमोदन करते हैं, यह सिखाते हुए कि मुक्त पुरुष संसार में उसके लाभ-हानि से बँधे बिना कार्य करते हैं (श्लोक 24)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

एकादश स्कन्ध जिस भाव से आरम्भ होता है, उसमें एक शान्त गम्भीरता है। हम भगवान् को भक्तों की रक्षा और दैत्यों के संहार में सुनने के अभ्यस्त हैं; यहाँ हम उन्हें कोमलता से, विचारपूर्वक, अपने ही प्रिय कुल का विसर्जन करते देखते हैं। यह कठोर प्रतीत हो सकता है — जब तक हम यह न देख लें कि वे इसे कैसे करते हैं। वे प्रहार नहीं करते; वे केवल होने देते हैं। वे एक मूर्खतापूर्ण परिहास, एक ऋषि के क्रोध, एक लोहे के मूसल, एक मछुआरे के जाल, तथा एक व्याध के बाण की स्वाभाविक गति को अपने समय में उघड़ने देते हैं, भीतर से उसका अनुमोदन करते हुए जिसे वे पहले ही संकल्पित कर चुके हैं। यही उस इच्छा का रहस्य है जिसे कभी बल प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। भक्त के लिए यह शिक्षा भयकारी नहीं, अपितु सान्त्वनादायी है: हमारे जीवन में कुछ भी, उसका बाह्य रूप चाहे कितना ही विचित्र या पीड़ादायक क्यों न हो, भगवान् की स्नेहमयी चेतना के बाहर नहीं है। वही हाथ जो शाप को निरस्त कर सकता था, उसने नियति के प्रत्येक सूक्ष्म तन्तु को अपना मौन कार्य करने दिया — क्योंकि उन्होंने सम्पूर्ण को देखा, और हम केवल अंश देखते हैं। उस दृष्टि पर विश्वास करना, तब भी जब कथा विसर्जन की ओर मुड़ती है, यही वास्तविक समर्पण का आरम्भ है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने जीवन की किसी ऐसी स्थिति को मन में लाएँ जो एक अवांछित मोड़-सी लगती हो — कोई हानि, कोई विलम्ब, कोई द्वार जो बन्द हो गया हो। उससे संघर्ष करने के स्थान पर, कुछ क्षण शान्ति में बैठें और उसे समर्पित कर दें, यह विश्वास करते हुए कि सम्पूर्ण को देखने वाले भगवान् उसके भीतर कार्यरत हो सकते हैं। ऐसा करते हुए, कोमलता से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को अपने प्रतिरोध को स्वीकार में बदलने दें — जैसे यादवों का भय विश्वास में बदल सकता था, यदि वे यह समझ पाते जो उनके भगवान् पहले ही जानते थे।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का प्रथम अध्याय एक भव्य एवं गम्भीर भूमिका रचता है। पृथ्वी का भार उतर चुका है, दैत्य तथा अधर्मी राजा जा चुके हैं, और भगवान् श्रीकृष्ण अपने अवतार के अन्तिम कार्य की ओर मुड़ते हैं: अपने ही तेजस्वी कुल का शान्तिपूर्ण विसर्जन तथा अपने शाश्वत धाम को प्रस्थान। एक युवकोचित परिहास, एक ऋषि के शाप, तथा समुद्र में बिखरे गए लोहे के मूसल के माध्यम से उस प्रस्थान की व्यवस्था मौन भाव से गति में आ जाती है — और स्वयं भगवान्, जो यह सब रोक सकते थे, उसे अपना मौन आशीर्वाद देते हैं। इस विचित्र एवं मार्मिक कथा के पीछे एक ही सत्य छिपा है जो आने वाले पूरे स्कन्ध को आलोकित करेगा: भगवान् काल एवं नियति के स्वामी हैं, संसार में पूर्ण स्वतन्त्रता तथा पूर्ण प्रेम के साथ कार्य करते हुए। इस देहली से भागवत अब हम सबके लिए भगवान् के विदाई-उपहार की ओर बढ़ता है — वे गूढ़ शिक्षाएँ जो वे शीघ्र ही अपने भक्त उद्भव को प्रदान करेंगे।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, अध्याय 1, पृष्ठ 517–518।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-1-yaduvansh-par-shaap-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

